॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

ऋग्वेदीय

नादबिन्दूपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

प्रथम अध्याय

प्रथम खण्ड

ॐकारकी हंसरूपमें उपासना

ॐ। प्रणवरूपी हंसका अकार दक्षिण पक्ष (पाँख) और उकार उत्तर (बायाँ) पक्ष माना गया है। मकार ही उसकी पूँछ है तथा अर्द्धमात्रा सिर है। रजोगुण और तमोगुण उसके दोनों पैर हैं और सत्त्वगुण शरीर कहलाता है। धर्म दक्षिण नेत्र है और अधर्म वाम नेत्र कहलाता है। भूलोक उसके दोनों पैरोंमें है। भुवर्लोक उसके दोनों जानुओंमें है, स्वर्लोक उसके कटिदेशमें है और महर्लोक नाभिदेशमें है। जनलोक उसके हृदयमें है, तपोलोक कण्ठदेशमें है। भौंहों और ललाटके बीचमें सत्यलोक व्यवस्थित है। उपर्युक्त कथनके अनुमोदनमें श्रुतिने संमतिरूपसे '**सहस्राक्ष्यम्**'* यह मन्त्र प्रदर्शित किया है। इस प्रकारसे वर्णित जो ॐकाररूपी हंस है, उसपर आरूढ़—उसके चिन्तनमें निमग्न हुआ हंसयोग-विचक्षण पुरुष—प्रणवकी ध्यान-विधिमें कुशल उपासक कर्मानुष्ठान करते हुए कोटि-कोटि पापोंसे छूटकर बन्धन-मुक्त हो जाता है॥ १—५॥

द्वितीय खण्ड

ॐकारकी बारह मात्राएँ और उनमें प्राण-वियोगका फल

अकार नामकी प्रथम मात्रा आग्नेयी है, अग्निमण्डल-सदृश उसका रूप है, अग्नि उसके देवता हैं। दूसरी उकार नामकी मात्रा वायव्या है, वायुमण्डलसदृश रूपवाली है। वायु उसके देवता हैं। उसके बाद मकार नामकी उत्तर-मात्रा सूर्यमण्डलके सदृश है, सूर्य ही उसके देवता हैं और चौथी अर्द्धमात्रा वारुणी है, उसके देवता वरुण हैं। उन चारों मात्राओंमेंसे प्रत्येक मात्रा तीन-तीन कलारूपी मुखसे सुशोभित है। इस प्रकार द्वादशकलात्मक 'ॐकार' कहा गया है। धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा इसको जानना चाहिये। उन द्वादश कलाओंमें प्रथमा मात्रा 'घोषिणी' कहलाती है, द्वितीया 'विद्युन्माला', तृतीया 'पतङ्गी', चतुर्थी 'वायुवेगिनी', पञ्चमी 'नामधेया' और षष्ठी मात्रा 'ऐन्द्री' कहलाती है। सप्तमीका नाम 'वैष्णवी' है और अष्टमी 'शाङ्करी' कहलाती है। नवमी 'महती', दशमी

---

* पूरा मन्त्र और उसका अर्थ इस प्रकार है—'सहस्राक्ष्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गं स देवान् सर्वानुरस्ययदद्य सम्पश्यन् याति भुवनानि पश्य।'

अर्थात् सूर्यदेवके विचरण करनेयोग्य जो स्वर्ग—द्युलोक है, उसकी ओर उड़नेवाले श्रीविष्णुरूपी हंस (ॐकार)-के दो पंख हैं—पूर्व और पश्चिमके आकाशस्वरूप, अकार और उकार—ये दो मात्राएँ। वह ॐकाररूप हंस सात्त्विक देवताओंको अपने सत्त्वमय हृदयमें स्थापित करके सम्पूर्ण लोकोंको प्रत्यक्ष देखता हुआ ब्रह्मलोकतक गमन करता है; उसपर आरूढ़ हुआ उपासक भी वहाँतक पहुँच जाता है।

'ध्रुवा,' एकादशी 'मौनी' और द्वादशी मात्रा 'ब्राह्मी' कहलाती है। यदि प्रथमा मात्रामें उपासकका प्राणान्त होता है तो वह भारतवर्षमें सार्वभौम चक्रवर्ती राजाके रूपमें जन्म लेता है। द्वितीया मात्रामें प्राणोंका उत्क्रमण होनेपर वह महिमाशाली यक्ष होता है। तृतीया मात्रामें विद्याधर और चतुर्थीमें गन्धर्व होता है। यदि पञ्चमी मात्रामें उसका प्राणोंसे वियोग होता है तो वह तुषित नामके देवताओंके साथ रहता हुआ चन्द्रलोकमें सम्मानित होता है। षष्ठी मात्रामें (मृत्यु होनेपर) इन्द्रका सायुज्य प्राप्त होता है। सप्तमीमें भगवान् विष्णुके पद (वैकुण्ठ-धाम)-को प्राप्त करता है। अष्टमीमें रुद्रलोकमें जाकर पशुपति भगवान् शङ्करका सामीप्य लाभ करता है। नवमी मात्रामें महर्लोक, दशमी मात्रामें ध्रुवलोक, एकादशी मात्रामें तपोलोक तथा द्वादशी मात्रामें प्राणका उत्क्रमण होनेपर उपासक शाश्वत ब्रह्मलोकमें (ब्रह्माकी आयुपर्यन्त) प्रतिष्ठित होता है॥ १—१०॥

तृतीय खण्ड

योगयुक्त स्थितिका वर्णन

इसकी अपेक्षा भी परतर—श्रेष्ठ, शुद्ध, व्यापक, निष्कल तथा कल्याणस्वरूप सदा उदित परमब्रह्म-तत्त्व है; उसीसे अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि सभी प्रकारकी ज्योतियोंका उदय होता है। जब मन इन्द्रियातीत और सत्त्व आदि तीनों गुणोंके परे परतत्त्वमें लीन होता है, तब वह उपमारहित और अभावस्वरूप हो जाता है। उस स्थितिमें साधकको योगयुक्त कहना चाहिये। जो परमात्माका भक्त है, जिसका मन परमात्मामें ही आसक्त है, वह योगमार्गके द्वारा स्वस्थ होकर सब प्रकारकी लौकिक आसक्तियोंसे मुक्त हो धीरे-धीरे शरीरमें आत्माभिमानको त्याग दे। तब उसका संसार-बन्धन नष्ट हो जाता है; वह निर्मल, कैवल्य-प्राप्त और परमात्मस्वरूप हो जाता है। और उसी ब्रह्मभावसे परमानन्दको प्राप्त करता है, परमानन्दका उपभोग करता है॥ १—४॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त॥ १॥

द्वितीय अध्याय

प्रथम खण्ड

ज्ञानीके लिये प्रारब्ध नहीं रह जाता

हे महामते! निरन्तर प्रयत्न करके आत्माके स्वरूपको जानकर उसीके चिन्तनमें अपना समय व्यतीत करो; समस्त प्रारब्धकर्मोंके भोगोंको भोगते हुए तुम्हें उद्विग्न नहीं होना चाहिये। आत्मज्ञान हो जानेपर भी प्रारब्ध स्वयं नहीं छोड़ता। परंतु जब तत्त्वज्ञानका उदय होता है, तब ज्ञानीकी दृष्टिमें प्रारब्धकर्मका उसी प्रकार अभाव हो जाता है, जिस प्रकार स्वप्नलोकके देहादिक असत् होनेके कारण जागनेपर नहीं रह जाते। जन्मान्तरके किये हुए जो कर्म हैं, वे ही प्रारब्ध कहे गये हैं। परंतु ज्ञानीके लिये तो जन्मान्तर भी नहीं है; अतः उसके लिये कभी भी प्रारब्ध नहीं रहता। जिस प्रकार स्वप्नकालीन देह देह नहीं होती, अध्यासमात्र होती है, उसी प्रकार यह जाग्रत्-कालका शरीर भी अध्यासमात्र है। अध्यस्त पदार्थकी उत्पत्ति कहाँ होती है और जिसकी उत्पत्ति नहीं हुई, उसकी स्थिति कहाँ! (जैसे रज्जुमें सर्पका अध्यास होनेपर रज्जुमें सर्प नहीं पैदा होता और न वहाँ सर्पकी स्थिति ही होती है।) इस प्रपञ्चका उपादान-कारण आत्मा है, जिस प्रकार मिट्टीके पात्रोंका उपादान-कारण मिट्टी है। वेदान्तके अनुसार यह प्रपञ्च अज्ञानके कारण आत्मामें भासता है; यदि अज्ञान नष्ट हो जाय तो विश्वकी विश्वता कहाँ रहेगी। जिस प्रकार भ्रमसे मनुष्य रज्जुबुद्धिका त्याग करके उसे सर्पबुद्धिसे ग्रहण करता है, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुष सत्य (आत्मा)-का ज्ञान न होनेके कारण प्रपञ्चको देखता है। जब सामने रस्सीके टुकड़ेको अच्छी तरह पहचान लेनेपर जैसे उसमें प्रतीत होनेवाला सर्परूप नहीं रह जाता, उसी प्रकार अधिष्ठानस्वरूप आत्माका ज्ञान होनेपर जब प्रपञ्च भी शून्यताको प्राप्त हो जाता है, तब

देह भी प्रपञ्चरूप ही होनेके कारण उसके साथ ही शून्यतामें परिणत हो जाता है। उस अवस्थामें प्रारब्धकी स्थिति कैसे रह सकती है। अज्ञानीजनोंको समझानेके लिये प्रारब्धकी बात कही जाती है। तदनन्तर कालवश ही प्रारब्धके नष्ट हो जानेपर प्रणव और ब्रह्मकी एकताके चिन्तनसे नादरूपमें साक्षात् ज्योतिर्मय, शिवस्वरूप परमात्माका आविर्भाव होता है—ठीक वैसे ही, जिस प्रकार मेघके दूर हो जानेपर सूर्यनारायण प्रकाशित हो उठते हैं। योगी सिद्धासनसे बैठकर वैष्णवी मुद्रा* धारण करके दाहिने कानके भीतर उठते हुए नाद (अनाहत ध्वनि)-को सदा सुनता रहे। इस प्रकार अभ्यासमें लाया हुआ नाद बाह्य ध्वनियोंको आवृत कर लेता है। इस प्रकार एक पक्ष अर्थात् अकारको जीतकर दूसरे पक्ष उकारको जीते और क्रमशः सम्पूर्ण प्रणवपर विजय प्राप्तकर तुर्यपद अर्थात् आत्मसाक्षात्कारको प्राप्त होता है॥ १—११॥

द्वितीय खण्ड

नादके अनेक प्रकार

अभ्यासके प्रारम्भमें यह नाद बहुत जोर-जोरसे और नाना प्रकारसे सुनायी देता है और अभ्यासके बढ़ जानेपर वह सूक्ष्मसे सूक्ष्मतररूपमें सुनायी पड़ता है। प्रारम्भमें समुद्र, बादल, भेरी तथा झरनोंसे उत्पन्न ध्वनिके समान एवं मृदङ्ग, घंटे तथा नगारेकी ध्वनिके समान वह नाद सुनायी देता है और अन्तमें किङ्किणी, वंशी, वीणा तथा भ्रमरकी ध्वनिके समान मधुर नाद सुन पड़ता है। इस प्रकार सूक्ष्म-से-सूक्ष्म होते हुए नाना प्रकारके नाद सुनायी पड़ते हैं॥ १—३॥

तृतीय खण्ड

नादानुसंधान

जब महान् भेरी आदिकी ध्वनि सुन पड़े, तब उसमें सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर नादका विचार करे—घने नादको छोड़कर सूक्ष्म नादमें अथवा सूक्ष्म नादको छोड़कर घने नादमें रमते या जाते हुए मनको अन्यत्र न ले जाय। पहले जिस किसी भी सूक्ष्म या घन नादमें मन लगता है, वहीं-वहीं वह स्थिर होकर उस नादके साथ ही विलीन हो जाता है। सारे बाह्य प्रपञ्चको भूलकर दूधमें मिले हुए पानीके समान नादमें एकीभूत हुआ मन उस नादके साथ ही सहसा चिदाकाशमें विलीन हो जाता है। इसलिये नाद-श्रवणसे अतिरिक्त विषयोंकी ओरसे उदासीन होकर संयमी पुरुष निरन्तर अभ्यासके द्वारा मनको तत्काल अपने प्रति उत्सुक बनानेवाले नादका ही श्रवण एवं चिन्तन करता रहे। सारी चिन्ताओंका त्याग करके, सारी चेष्टाओंको छोड़कर नादका ही अनुसंधान करे; क्योंकि नादमें चित्त विलीन होता है, नादमें चित्त विलीन होता है॥ १—५॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त॥ २॥

तृतीय अध्याय

प्रथम खण्ड

नादके द्वारा मन कैसे वशीभूत होता है

जिस प्रकार पुष्परसका पान करता हुआ भ्रमर पुष्पगन्धकी अपेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार नादमें सदा आसक्त रहनेवाला चित्त विषयोंकी आकाङ्क्षा नहीं करता। यह चित्तरूपी आन्तरिक सर्प नादको ग्रहण करनेपर उस सुन्दर नादकी गन्धसे बँधकर तत्काल सारी चपलताओंका परित्याग कर देता है। फिर

* अन्तर्लक्ष्यं बहिर्दृष्टिर्निमेषोन्मेषवर्जिता। एषा सा वैष्णवी मुद्रा सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥

'बाहरकी ओर निर्निमेष दृष्टि हो और भीतरकी ओर लक्ष्य हो—सब तन्त्रोंमें गूढ भावसे बतायी हुई वह वैष्णवी मुद्रा यही है।'

संसारको भूलकर और एकाग्र होकर इधर-उधर कहीं नहीं दौड़ता। विषयोंके उद्यानमें विचरनेवाले मनरूपी मतवाले हाथीको वशीभूत करनेमें यह नादरूपी तीक्ष्ण अंकुश ही समर्थ होता है। यह नाद मनरूपी मृगके बाँधनेमें जालका काम करता है। मनरूपी तरङ्गको रोकनेमें तटका काम करता है॥ १—५॥

द्वितीय खण्ड

नादमें मनका लय

ब्रह्मस्वरूप प्रणवमें संलग्न नाद ज्योतिःस्वरूप होता है, उसमें मन लयको प्राप्त होता है। वही भगवान् विष्णुका परमपद है। जबतक शब्दोंका उच्चारण और श्रवण होता है, तभीतक मनमें आकाशका संकल्प रहता है। निःशब्द होनेपर तो वह परम ब्रह्म परमात्मरूपमें ही अनुभूत होता है। जबतक नाद है, तबतक मन है। नादके सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर होनेपर मन भी अमन हो जाता है। सशब्द नाद अक्षर-ब्रह्ममें क्षीण हो जाता है। उस निःशब्द नादको ही परम पद कहते हैं। जब निरन्तर नादका अनुसन्धान करनेसे वासनाएँ सम्यक्‌रूपसे क्षीण हो जाती हैं, तब मन और प्राण निःसन्देह निराकार ब्रह्ममें विलीन हो जाते हैं। कोटि-कोटि नाद और कोटि-कोटि बिन्दु ब्रह्मप्रणवनादमें लीन हो जाते हैं॥ १—५॥

तृतीय खण्ड

मनके अमन हो जानेकी स्थितिका वर्णन

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति प्रभृति सारी अवस्थाओंसे मुक्त हुआ तथा सारी चिन्ताओंको त्यागकर जो योगी मृतवत् रहता है, वह मुक्त है—इसमें संशय नहीं है। वह शङ्ख-दुन्दुभिनादको कदापि नहीं सुनता। जिसमें मन अमन हो जाता है, उस अवस्थाके होनेपर मन इस देहमें रहकर भी काष्ठवत् निश्चेष्ट प्रतीत होता है। वह न शीत जानता है न उष्ण और न सुख जानता है न दुःख। न मान समझता है न अपमान। समाधिके द्वारा वह इन सबका सम्यक्‌रूपसे त्याग कर देता है। योगीका चित्त जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाओंका कभी अनुसरण नहीं करता। योगी जाग्रत् तथा स्वप्नावस्थासे मुक्त होकर अपने स्वरूपमें अवस्थित होता है। बिना दृश्य वस्तुके ही जिसकी दृष्टि स्थिर है, बिना प्रयत्नके ही जिसकी प्राणवायु स्थिर है, बिना किसी अवलम्ब या आश्रयके ही जिसका चित्त स्थिर हो गया है, वह योगी ब्रह्ममय प्रणवके अन्तर्वर्ती तुरीय-तुरीय स्वरूप नादरूपमें स्थित है। यह इतना उपनिषद् है॥ १—५॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त॥ ३॥

॥ ऋग्वेदीय नादबिन्दूपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!